[2011] 9 एस.सी.आर. 815

बख्शी देव राज एवं अन्य

बनाम

सुधीर कुमार

(सिविल अपील संख्याएं 4641-4642/2009)

04 अगस्त, 2011

[पी. सदाशिवम तथा एच.एल. गोखले, न्यायमूर्ति]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

आदेश XXIII/नियम 3 - वाद का समझौता - इसकी आवश्यकता -
अभिनिर्धारित: सुनवाई के दौरान, अर्थात् वाद या अपील के समय, जब पक्षकार आपस में समझौता करते हैं, तो उसे लिखित रूप में एक दस्तावेज के रूप में तैयार किया जाना चाहिए तथा उस पर पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए।

आदेश XLVII नियम 1(क) - पुनर्विचार याचिका - ग्राह्यता - अपीलकर्ताओं द्वारा द्वितीय अपील के विरुद्ध एस.एल.पी. दायर की गई - न्यायालय की अनुमति के बिना वापस ली जाने के कारण निरस्त - द्वितीय अपील के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में पुनर्विचार याचिका दायर - उसकी ग्राह्यता - अभिनिर्धारित: एस.एल.पी. के निरस्तीकरण के पश्चात, चाहे कारण सहित हो या बिना कारण के, पीड़ित पक्ष पुनर्विचार याचिका दायर करने का अधिकारी है - आदेश 47 नियम 1(क) में प्रयुक्त भाषा के परिप्रेक्ष्य में, पुनर्विचार याचिका को ग्राह्यता के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता - अतः अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका ग्राह्य थी, किन्तु आदेश 3 नियम 1 एवं 4 के प्रावधानों तथा अपीलकर्ताओं के आचरण, जिसमें उन्होंने अपने अधिवक्ता के कृत्य के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई सिवाय पुनर्विचार याचिका दायर करने के, के कारण उनका दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अधिवक्ता/वकील - भूमिका - समझौते के संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करने में - मुवक्किल की ओर से कार्य करने के अधिकार की सीमा एवं प्रकृति - अभिनिर्धारित: वकालतनामा में संलग्न शर्तें अधिवक्ता को अपने मुवक्किल की ओर से विभिन्न कार्य करने में सक्षम बनाती हैं, जिनमें वाद को वापस लेना अथवा उसका समझौता/निपटान करना भी शामिल है - ये प्रावधान अधिवक्ता को अत्यंत हितकारी ढंग से कार्य करने का अधिकार प्रदान करते हैं - अधिवक्ता को पक्षकार के निर्देशों के आधार पर अपील वापस लेने के संबंध में वक्तव्य देने का अधिकार है - ऐसी परिस्थिति में, अपील की वापसी या डिक्री में संशोधन के लिए निर्देशों के आधार पर अधिवक्ता द्वारा दिया गया वक्तव्य उसके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता है और यदि वास्तव में अधिवक्ता ने पक्षकार के हित में कार्य नहीं किया हो या उसके निर्देशों के विपरीत कार्य किया हो, तो उसका उपाय अन्यत्र उपलब्ध है - तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने हेतु कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील की

सुनवाई के दौरान अधिवक्ता द्वारा दिया गया वक्तव्य किसी निर्देश पर आधारित नहीं था - इसके अतिरिक्त, पुनर्विचार याचिका दायर करने तक अपीलकर्ताओं ने अपने अधिवक्ता के इस प्रकार के आचरण पर कोई आपत्ति पत्र लिखकर या नोटिस भेजकर नहीं उठाई - ऐसी स्थिति में यह नहीं माना जा सकता कि अधिवक्ता पक्षकारों की ओर से कोई वक्तव्य देने से वंचित था - अधिवक्ता की वर्तमान प्रतिष्ठा की रक्षा करने तथा विधिक पेशे की गरिमा एवं सम्मान बनाए रखने के लिए यह सदैव वांछनीय है कि निर्देश लिखित रूप में प्राप्त किए जाएं।

प्रतिवादी का भूखंड अपीलकर्ता की भूमि के एक ओर स्थित है। प्रतिवादी ने भूमि के स्वामित्व की घोषणा तथा कब्जा प्राप्त करने के लिए वाद दायर किया और साथ ही वादित भूमि में अपीलकर्ताओं को रोकने हेतु स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री की भी प्रार्थना की। विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज कर दिया। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादी के पक्ष में अपील स्वीकार कर ली। अपीलकर्ताओं ने द्वितीय अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने विधि के दो प्रश्न निर्धारित किए। बहस के दौरान, दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं ने सहमति व्यक्त की कि निर्धारित विधि प्रश्नों पर विचार किए बिना, अपील में चुनौती दी गई डिक्री में संशोधन कर मामले का निपटारा किया जा सकता है। तत्पश्चात, द्वितीय अपील का निपटारा उच्च न्यायालय द्वारा दोनों पक्षों की सहमति से डिक्री में संशोधन करते हुए कर दिया गया। अपीलकर्ताओं ने एस.एल.पी. दायर की, जिसे वापस ले लिए जाने के कारण निरस्त कर दिया गया। इसके पश्चात, अपीलकर्ताओं ने द्वितीय अपील में पारित आदेश के पुनर्विचार हेतु उच्च न्यायालय में पुनर्विचार याचिका दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया। इससे व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने द्वितीय अपील तथा पुनर्विचार याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील दायर की।

इन अपीलों में विचारार्थ उत्पन्न प्रश्न यह हैं कि क्या द्वितीय अपील के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में दायर पुनर्विचार याचिका, उस द्वितीय अपील के विरुद्ध दायर एस.एल.पी. के निरस्त हो जाने के परिप्रेक्ष्य में ग्राह्य है; क्या अधिवक्ता द्वारा यह कथन कि पक्षकारों ने बिना किसी लिखित दस्तावेज या अपीलकर्ताओं की सहमति के डिक्री में संशोधन करते हुए समझौता कर लिया है, स्वीकार्य है; तथा क्या न्यायालय की अनुमति के बिना एस.एल.पी. का वापस लिए जाने के कारण निरस्त होना, उक्त आदेश को किसी उपयुक्त न्यायालय/मंच के समक्ष चुनौती देने के उपाय के उपयोग पर रोक है।

अपीलों को खारिज करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित: 1.1 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 के अनुसार, समझौता लिखित रूप में होना चाहिए तथा उस पर पक्षकारों के हस्ताक्षर होने चाहिए। सुनवाई के दौरान, अर्थात् वाद या अपील के समय, जब पक्षकार आपस में समझौता करते हैं, तो उसे एक दस्तावेज के रूप में लिखित किया जाना चाहिए तथा उस पर पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पक्षकार समझौते की शर्तों को लिखित रूप में प्रस्तुत करें। [पैरा 9 एवं 12] [828-D-E; 830-A-B]

गुरप्रीत सिंह बनाम चतुर भुज गोयल **(1988) 1 एस.सी.सी. 270: 1988 (2) एस.सी.आर. 401;** *पुष्पा देवी भगत (मृत) विधिक प्रतिनिधि साधना राय (श्रीमती) बनाम राजेन्द्र सिंह एवं अन्य* **(2006) 5 एस.सी.सी. 566: 2006 (3) परिशिष्ट एस.सी.आर. 370 - संदर्भित।**

1.2 वर्तमान मामले में, द्वितीय अपील की सुनवाई के दौरान, दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं ने सहमति व्यक्त की कि निर्धारित विधि प्रश्नों पर विचार किए बिना, अपील में चुनौती दी गई डिक्री में संशोधन करते हुए, सर्वेक्षण संख्या 110/65 के अंतर्गत भूमि के क्षेत्रफल को तथा उसके अंतर्गत स्थित भूमि और दूसरी ओर की सर्वेक्षण संख्या 109/65 की भूमि के बीच की सीमा, जो वर्तमान में स्थल पर विद्यमान शीशम और श्रीन वृक्ष हैं, को सम्मिलित कर मामले का निपटारा किया जा सकता है। [पैरा 11] [829-F-G]

2.1 वकालतनामा में संलग्न शर्तें अधिवक्ता को अपने मुवक्किल की ओर से अनेक कार्य करने में सक्षम बनाती हैं, जिनमें न्यायालय के समक्ष लंबित वाद या मामले को वापस लेना अथवा उसका समझौता करना भी सम्मिलित है। वकालतनामा की विभिन्न धाराएं निःसंदेह अधिवक्ता को अत्यंत हितकारी ढंग से कार्य करने का अधिकार प्रदान करती हैं, जिसमें समझौता या निपटान करना भी शामिल है। [पैरा 12] [830-C-D]

2.2 वह अधिवक्ता, जिसे किसी पक्षकार द्वारा वकालतनामा निष्पादित कर विधिवत उपस्थित होने के लिए अधिकृत किया गया है तथा आदेश 3 नियम 4 के प्रावधानों के अनुसार, वाद की कार्यवाही विधिवत समाप्त होने तक अभिलेख पर बने रहने का अधिकार रखता है। अतः अधिवक्ता को पक्षकार के निर्देशों के आधार पर अपील वापस लेने के संबंध में वक्तव्य देने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में, अपील की वापसी या डिक्री में संशोधन हेतु निर्देशों के आधार पर अधिवक्ता द्वारा दिया गया वक्तव्य उसके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता है और यदि वास्तव में अधिवक्ता ने पक्षकार के हित में कार्य नहीं किया हो या उसके निर्देशों के विपरीत कार्य किया हो, तो उसका उपाय अन्यत्र उपलब्ध है। यद्यपि अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार रूप से यह प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील की सुनवाई के दौरान अधिवक्ता द्वारा दिया गया वक्तव्य किसी निर्देश पर आधारित नहीं था, तथापि इस बात को सिद्ध करने हेतु कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। निस्संदेह, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने इस तथ्य पर भी निर्भर किया कि प्रथम अपीलकर्ता शय्याग्रस्त एवं अस्पताल में भर्ती था, अतः वह कोई निर्देश नहीं दे सका। उनके अनुसार, न्यायालय के समक्ष दिया गया ऐसा वक्तव्य, जिसमें कुछ अधिकारों का परित्याग किया गया, अधिवक्ता के अधिकार से परे है और टिकाऊ नहीं है। यह सत्य है कि प्रासंगिक समय पर, अर्थात् जब अधिवक्ता ने द्वितीय अपील की सुनवाई के दौरान वक्तव्य दिया, तब पक्षकारों में से एक बीमार एवं अस्पताल में भर्ती था, तथापि यह विवादित नहीं है कि उसका पुत्र, जो उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षकार भी था, उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त, यह भी विवादित नहीं है कि पुनर्विचार याचिका दायर करने तक अपीलकर्ताओं ने अपने अधिवक्ता द्वारा द्वितीय अपील की सुनवाई के दौरान ऐसा

वक्तव्य देने के संबंध में कोई आपत्ति पत्र लिखकर या नोटिस भेजकर नहीं उठाई। ऐसी किसी कार्यवाही या सामग्री के अभाव में तथा सी.पी.सी. के प्रावधानों के आलोक में यह नहीं माना जा सकता कि अधिवक्ता पक्षकारों की ओर से कोई वक्तव्य देने से वंचित था। निस्संदेह, अधिवक्ता की वर्तमान प्रतिष्ठा की रक्षा करने तथा विधिक पेशे की गरिमा एवं सम्मान बनाए रखने के लिए यह सदैव वांछनीय है कि निर्देश लिखित रूप में प्राप्त किए जाएं। [पैरा 15] [833-F-H; 834-A-E]

बायराम पेस्टोनजी गारिवाला बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य **(1992) 1 एस.सी.सी. 31: 1991 (1) परिशिष्ट एस.सी.आर. 187;** *जिनेश्वरदास (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य बनाम जागरानी (श्रीमती) एवं अन्य* **(2003) 11 एस.सी.सी. 372: 2003 (4) परिशिष्ट एस.सी.आर. 179;** *जगतार सिंह बनाम परगट सिंह एवं अन्य* **(1996) 11 एस.सी.सी. 586: 1996 (9) परिशिष्ट एस.सी.आर. 252 - पर निर्भर किया गया।**

3. उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं के वक्तव्य के आधार पर डिक्री में संशोधन करते हुए द्वितीय अपील का निपटारा कर दिया। उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. दायर की। इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा याचिका वापस लेने के लिए की गई प्रार्थना को स्वीकार किया और विशेष अनुमति याचिका को वापस लिए जाने के कारण निरस्त कर दिया। उक्त आदेश के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अधिवक्ता के अनुरोध के आधार पर ही एस.एल.पी. को वापस लिया गया। यह भी स्पष्ट है कि आगे की कार्यवाही करने के लिए कोई अनुमति, आरक्षण या स्वतंत्रता प्रदान नहीं की गई। तथापि, एस.एल.पी. का निरस्तीकरण पुनर्विचार याचिका दायर करने में बाधा नहीं है। एस.एल.पी. के निरस्त होने के पश्चात भी, पीड़ित पक्ष पुनर्विचार के माध्यम से संबंधित न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकते हैं। वर्तमान मामले में, यद्यपि अपीलकर्ताओं ने द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में एस.एल.पी. दायर की, तथापि निर्विवाद रूप से एस.एल.पी. न्यायालय की अनुमति के बिना वापस लिए जाने के कारण निरस्त कर दी गई। [पैरा 16 एवं 17] [834-G-H; 835-B-C; 839-C-D]

कुन्हयम्मद एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य **(2000) 6 एस.सी.सी. 359: 2000 (1) परिशिष्ट एस.सी.आर. 538;** *सरगुजा ट्रांसपोर्ट सर्विस बनाम राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, मध्य प्रदेश, ग्वालियर एवं अन्य* **(1987) 1 एस.सी.सी. 5: 1987 (1) एस.सी.आर. 200 - पर निर्भर किया गया।**

4.1 एस.एल.पी. के निरस्त हो जाने के पश्चात, चाहे कारण सहित हो या बिना कारण के, पीड़ित पक्ष पुनर्विचार याचिका दायर करने का अधिकारी है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1(क), जो "पुनर्विचार" से संबंधित है, में प्रयुक्त भाषा के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान पुनर्विचार याचिका को ग्राह्यता के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता। अतः अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका ग्राह्य थी, किन्तु अधिवक्ताओं की भूमिका से संबंधित आदेश 3 नियम 1 एवं 4 के प्रावधानों तथा अपीलकर्ताओं के इस आचरण के कारण

कि उन्होंने अपने अधिवक्ता के कृत्य के संबंध में पुनर्विचार याचिका दायर करने के अतिरिक्त कोई आपत्ति नहीं उठाई, उनका दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता। [पैरा 19] [841-C-E]

4.2 अपीलकर्ताओं द्वारा यह तर्क दिया गया कि उनके अधिवक्ता द्वारा की गई स्वीकृति के कारण उन्होंने अपनी संपत्ति खो दी और उन्हें धन के रूप में भारी हानि हुई। द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के आदेश में उपलब्ध संशोधित डिक्री तथा सीमांकन रेखा के रूप में विद्यमान शीशम और श्रीन वृक्षों के संबंध में प्रस्तुत नक्शे के अवलोकन से, और यह कि जब भी वे वृक्ष किसी भी ओर गिरते हैं तो संबंधित भूमि के स्वामी पक्ष को उनके उपयोग का अधिकार प्राप्त होता है, इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता। [पैरा 20] [841-F-G]

उद्धृत निर्णयजन्य विधि:

1988 (2)	**एस.सी.आर. 401**		**पैरा 9 में संदर्भित**
2006 (3)	**परिशिष्ट एस.सी.आर.**	**370**	**पैरा 10 में संदर्भित**
1991 (1)	**परिशिष्ट एस.सी.आर.**	**187**	**पैरा 12, 15 में निर्भर किया गया**
2003 (4)	**परिशिष्ट एस.सी.आर.**	**179**	**पैरा 13 में निर्भर किया गया**
1996 (9)	**परिशिष्ट एस.सी.आर.**	**252**	**पैरा 14 में निर्भर किया गया**
2000 (1)	**परिशिष्ट एस.सी.आर.**	**538**	**पैरा 16 में निर्भर किया गया**
1987 (1)	**एस.सी.आर. 200**		**पैरा 18 में संदर्भित**

सिविल अपीलीय अधिकारिता : सिविल अपील संख्याएं 4641-4642/2009

जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय, जम्मू के दिनांक 18.03.2008 एवं 08.09.2008 के निर्णय एवं आदेश से, जो सिविल द्वितीय अपील संख्या 19/2005 एवं पुनर्विचार याचिका संख्या (सी) डी-5/2008 में पारित हुआ।

दिनेश कुमार गर्ग, बी.जे. बिल्लोवरिया, डॉ. भीम प्रताप सिंह, अभिषेक गर्ग - अपीलकर्ताओं की ओर से।

रंजीत कुमार, समीर पारेख, कार्माइकल मार्टिन, सुमित गोयल, देबोज्योति भट्टाचार्य, पारेख एंड कंपनी - प्रतिवादी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा प्रदान किया गया:

पी. सतासीवम, न्यायधीश 1. ये अपीलें जम्मू स्थित जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा सिविल द्वितीय अपील संख्या 19/2005 तथा पुनर्विचार याचिका (सी) संख्या डी-5/2008 में क्रमशः दिनांक 18.03.2008 एवं 08.09.2008 को पारित अंतिम निर्णय एवं आदेशों के विरुद्ध निर्देशित हैं, जिनके द्वारा उच्च न्यायालय ने यहां के अपीलकर्ताओं द्वारा दायर द्वितीय अपील तथा पुनर्विचार याचिका को खारिज कर दिया।

2. संक्षिप्त तथ्य:

(a) अपीलकर्ता संख्या 1 के पिता श्री हरबंस लाल ने दिनांक 18.03.1959 के पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से गुरदास नामक व्यक्ति से तहसील कठुआ के ग्राम चक गैंदा में स्थित खसरा संख्या 65 की 40 कनाल 4 मरला विवादित भूमि क्रय की। उक्त भूमि खसरा संख्या 109/65 में आती है और यह अपीलकर्ता संख्या 1 के पिता के नाम पर दर्ज थी तथा उनके निधन के पश्चात खारिफ 1987 से अपीलकर्ता संख्या 1 का नाम दर्ज किया गया।

(b) प्रतिवादी सुधीर कुमार का भूखंड अपीलकर्ताओं की भूमि के दक्षिणी भाग में स्थित है। दिनांक 29.04.1991 को, वर्तमान प्रतिवादी ने उप-न्यायाधीश, कठुआ की न्यायालय में सिविल वाद संख्या 17/सिविल/1991 दायर किया, जिसमें यह घोषणा करने की डिक्री की प्रार्थना की गई कि वह वादित भूमि का स्वामी एवं कब्जाधारी है, जिसकी सीमा इस प्रकार है– पूर्व में कठुआ कालीबाड़ी रोड 90 फुट, पश्चिम में पुलिस लाइन 96 फुट, उत्तर में बख्शी देव राज (यहां के अपीलकर्ता संख्या 1) की भूमि तथा दक्षिण में गली 460 फुट, जो वार्ड संख्या 1, ग्राम चक गैंदा, तहसील कठुआ में स्थित है, तथा साथ ही वादित भूमि में अपीलकर्ताओं को हस्तक्षेप करने से रोकने हेतु स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री की भी प्रार्थना की गई। दिनांक 06.04.1993 को, यहां के अपीलकर्ताओं ने उक्त सिविल वाद में संयुक्त लिखित बयान दायर किया। विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.04.2003 के निर्णय द्वारा प्रतिवादी द्वारा दायर वाद को खारिज कर दिया।

(c) उक्त निर्णय से व्यथित होकर, प्रतिवादी ने जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कठुआ की न्यायालय में सिविल प्रथम अपील संख्या 6 दायर की। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 09.06.2005 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 25.04.2003 के निर्णय एवं आदेश को निरस्त करते हुए अपील को प्रतिवादी के पक्ष में स्वीकार कर लिया।

(d) उक्त के विरुद्ध, अपीलकर्ताओं ने जम्मू स्थित जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील संख्या 19/2005 दायर की। दिनांक 18.03.2008 के निर्णय द्वारा, द्वितीय अपील का निपटारा उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों की सहमति से डिक्री में संशोधन करते हुए कर दिया।

(e) उक्त आदेश के विरुद्ध, यहां के अपीलकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका सं. एस.एल.पी. (सी) सं. 10939/2008 दायर की गई, जिसे दिनांक 14.05.2008 को वापस लिए जाने के कारण निरस्त कर दिया गया। दिनांक 21.05.2008 को, अपीलकर्ताओं ने द्वितीय अपील में दिनांक 18.03.2008 को पारित आदेश के पुनर्विचार हेतु उच्च न्यायालय के समक्ष पुनर्विचार याचिका सं. (सी) डी-5/2008 दायर की। उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 08.09.2008 के आदेश द्वारा अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका को खारिज कर दिया।

(f) द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 18.03.2008 के अंतिम आदेश तथा पुनर्विचार याचिका में दिनांक 08.09.2008 के आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने विशेष अनुमति याचिकाओं के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपीलें दायर कीं।

3. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री दिनेश कुमार गर्ग तथा प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार को सुना गया।

4. इन अपीलों में विचारार्थ उत्पन्न प्रश्न निम्नलिखित हैं:

(i) क्या द्वितीय अपील संख्या 19/2005 के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष दायर पुनर्विचार याचिका (सी) संख्या डी-5/2008, उक्त द्वितीय अपील के विरुद्ध इस न्यायालय द्वारा दिनांक 14.05.2008 को एस.एल.पी. (सी) संख्या 10939/2008 के निरस्त किए जाने के परिप्रेक्ष्य में ग्राह्य है?
(ii) क्या अधिवक्ता द्वारा यह कथन कि पक्षकारों ने बिना किसी लिखित दस्तावेज या अपीलकर्ताओं की सहमति के डिक्री में संशोधन करते हुए समझौता कर लिया है, स्वीकार्य है? तथा
(iii) क्या न्यायालय की अनुमति के बिना एस.एल.पी. का वापस लिए जाने के कारण निरस्त होना, उक्त आदेश को किसी उपयुक्त न्यायालय/मंच के समक्ष चुनौती देने के उपाय के उपयोग पर रोक है?

5. वर्तमान अपीलकर्ताओं ने प्रथम अपील संख्या 6 में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.06.2005 के निर्णय एवं डिक्री को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील संख्या 19/2005 दायर की। उक्त द्वितीय अपील को स्वीकार करते समय, उच्च न्यायालय ने विधि के दो प्रश्न निर्धारित किए, प्रथम, क्या आयुक्त की रिपोर्ट उसके औपचारिक प्रमाण के बिना ग्राह्य साक्ष्य है, तथा द्वितीय, क्या एक वास्तुकार द्वारा तैयार किए गए स्थल योजना पर भरोसा किया जा सकता है, जबकि वही अभिलेख राजस्व प्राधिकारियों के पास उपलब्ध है जिसे वादी द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया। उच्च न्यायालय के आदेश से यह भी स्पष्ट होता है कि बहस के दौरान, दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं ने सहमति व्यक्त की कि निर्धारित विधि प्रश्नों पर विचार किए बिना, अपील में चुनौती दी गई डिक्री में संशोधन

करते हुए, सर्वेक्षण संख्या 110/65 के अंतर्गत भूमि के क्षेत्रफल को तथा उसके अंतर्गत स्थित भूमि और दूसरी ओर की सर्वेक्षण संख्या 109/65 की भूमि के बीच की सीमा, जो वर्तमान में स्थल पर विद्यमान शीशम और श्रीन वृक्ष हैं, को सम्मिलित कर मामले का निपटारा किया जा सकता है। उन्होंने आगे यह भी स्वीकार किया कि उनकी-उनकी भूमि का जो भाग किसी भी ओर पड़ता है, उस पर वे कोई दावा नहीं करेंगे और शीशम एवं श्रीन के वृक्ष प्रतिवादी की संपत्ति होंगे, जिन्हें वह उचित समयावधि के भीतर काट सकता है। उपर्युक्त दोनों अधिवक्ताओं के कथनों के आधार पर, उच्च न्यायालय ने विवादित डिक्री में निम्न प्रकार से संशोधन किया:

"(a) प्रतिवादी/वादी का वाद डिक्री किया जाता है, जिसमें दूसरी पक्ष को उसके 11 कनाल 12 मरला भूमि, जो सर्वेक्षण संख्या 110/65 के अंतर्गत है, तथा स्थल पर विद्यमान उसकी अन्य स्वामित्व भूमि में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने या अतिक्रमण करने से रोका जाता है।

(b) स्थल पर विद्यमान शीशम एवं श्रीन के वृक्ष, उपर्युक्त के अनुसार दोनों पक्षों की भूमि के बीच सीमा रेखा होंगे, जिसमें सटीक सीमांकन रेखा वृक्षों के मध्य से होकर जाएगी, और उक्त वृक्ष प्रतिवादी/वादी की संपत्ति होंगे, जिन्हें वह उचित समय पर बिना अनावश्यक विलंब के काट सकता है।

(c) जब भी किसी पक्ष की स्वामित्व भूमि वृक्षों के दूसरी ओर स्थित होकर विपरीत पक्ष की भूमि का भाग बनती है, तो उस पर दोनों पक्षों द्वारा परस्पर स्वीकृति मानी जाएगी तथा ऐसे दावे त्याग दिए गए माने जाएंगे।

(d) व्यय नहीं।"

6. यह इंगित करते हुए कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दी गई स्वीकृति विधिसम्मत नहीं थी और भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23 के उल्लंघन में थी तथा यह कि न्यायालय द्वारा निर्धारित महत्वपूर्ण विधि प्रश्नों पर सुनवाई किए बिना ही द्वितीय अपील का निपटारा कर दिया गया, अपीलकर्ताओं ने पुनर्विचार याचिका (सी) संख्या डी-5/2008 दायर की। उच्च न्यायालय के समक्ष भी, पुनर्विचार याचिका की ग्राह्यता के संबंध में निम्नलिखित आपत्तियां उठाई गईं:

"(a) कि एक बार याचिकाकर्ता द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर कर दी गई, तो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1 उपनियम (1) के अंतर्गत पुनर्विचार वर्जित है।

(b) कि आवेदन समय-सीमा से बाधित है, क्योंकि जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय नियमों के नियम 66 उपनियम (3) के अनुसार पुनर्विचार दायर करने की निर्धारित अवधि 30 दिन है।

(c) कि पुनर्विचार आवेदन तभी ग्राह्य हो सकता है जब कोई साक्ष्य या तथ्य प्राप्त हुआ हो जो डिक्री पारित होने के समय याचिकाकर्ता के ज्ञान में नहीं था या अभिलेख के आधार पर कोई स्पष्ट त्रुटि या भूल हो।"

7. उपर्युक्त आपत्तियों के परिप्रेक्ष्य में, माननीय एकल न्यायाधीश ने पुनर्विचार याचिका को उसके गुण-दोष तथा ग्राह्यता दोनों पर विस्तार से सुना। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे "सी.पी.सी." कहा गया है) के आदेश 23 नियम 3 तथा आदेश 47 नियम 1 के उपनियम (1) के संदर्भ में तर्क प्रस्तुत किए गए और अंततः यह पाते हुए कि उठाया गया प्रश्न न तो विधि का प्रश्न है और न ही अभिलेख के आधार पर कोई स्पष्ट त्रुटि है, पुनर्विचार याचिका को खारिज कर दिया गया। वर्तमान अपील में, अपीलकर्ताओं ने न केवल पुनर्विचार याचिका के खारिज किए जाने को चुनौती दी है, बल्कि उच्च न्यायालय में दायर द्वितीय अपील के अंतिम निर्णय को भी चुनौती दी है। इन तथ्यों के आलोक में, अब हम पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में उठाए गए प्रश्नों पर विचार करते हैं। चूंकि प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार ने वर्तमान अपील की ग्राह्यता के संबंध में आपत्ति उठाई है, अतः सर्वप्रथम हम उसी पर विचार करेंगे और तत्पश्चात उच्च न्यायालय के विवादित आदेश के गुण-दोष पर विचार करेंगे।

वाद का समझौता

8. सी.पी.सी. का आदेश 23 "वादों की वापसी एवं समायोजन" से संबंधित है। आदेश 23 का नियम 3 "वाद का समझौता" के संबंध में है, जो निम्नलिखित है:

"3. **वाद का समझौता** - जहाँ यह न्यायालय की संतुष्टि के लिए सिद्ध हो जाता है कि किसी वाद का पूर्णतः या आंशिक रूप से किसी वैध लिखित समझौते या समझौते द्वारा, जिस पर पक्षकारों के हस्ताक्षर हों, निपटान कर लिया गया है, अथवा जहाँ प्रतिवादी वाद के विषय-वस्तु के पूर्णतः या किसी भाग के संबंध में वादी को संतुष्ट कर देता है, वहाँ न्यायालय ऐसे समझौते, समायोजन या संतोष को अभिलेखित करने का आदेश देगा तथा उसके अनुसार डिक्री पारित करेगा, जहाँ तक वह वाद के पक्षकारों से संबंधित हो, चाहे समझौते, समायोजन या संतोष की विषय-वस्तु वाद की विषय-वस्तु के समान हो या नहीं:

परंतु यह कि जहाँ एक पक्ष द्वारा यह आरोप लगाया जाता है और दूसरे द्वारा उसका खंडन किया जाता है कि कोई समायोजन या संतोष प्राप्त हुआ है, वहाँ न्यायालय उस प्रश्न का निर्णय करेगा; किन्तु उस प्रश्न के निर्णय के उद्देश्य से कोई स्थगन नहीं दिया जाएगा, जब तक कि न्यायालय, अभिलेखित किए जाने वाले कारणों से, ऐसा स्थगन देना उचित न समझे।

स्पष्टीकरण- भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (9 का 1872) के अधीन जो समझौता या करार शून्य या शून्यकरणीय है, उसे इस नियम के अर्थ में विधिसम्मत नहीं माना जाएगा।"

9. इसी नियम पर इस न्यायालय द्वारा *गुरप्रीत सिंह बनाम चतुर भुज गोयल*, (1988) 1 एस.सी.सी. 270 में विचार किया गया था। उस मामले में, वहां के प्रतिवादी चतुर भुज गोयल, जो चंडीगढ़ में अधिवक्ता के रूप में कार्यरत थे, ने पहले अपीलकर्ता के पिता कर्नल सुखदेव सिंह के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे आगे "आई.पी.सी." कहा गया है) की धारा 420 के अंतर्गत एक आपराधिक शिकायत दर्ज कराई, जब उन्होंने दिनांक 11.07.1979 की सूचना देकर उनके द्वारा बयाना राशि के रूप में दी गई 40,000/- रुपये की राशि को जब्त कर लिया, यह आरोप लगाते हुए कि दिनांक 04.06.1979 को कर्नल सुखदेव सिंह, जो उस समय नाबालिग अपीलकर्ता के अभिभावक के रूप में कार्य कर रहे थे, और प्रतिवादी के बीच 2,85,000/- रुपये में आवासीय मकान संख्या 1577, सेक्टर-18-डी, चंडीगढ़ के विक्रय के लिए हुए अनुबंध का उल्लंघन हुआ है। समझौते की शर्तों के अनुसार, प्रतिवादी को 10.07.1979 तक 1,35,000/- रुपये की अतिरिक्त राशि अपीलकर्ता के पिता कर्नल सुखदेव सिंह को अदा करनी थी, जिस दिन उक्त विक्रय अनुबंध का पंजीकरण होना था और मकान का खाली कब्जा उसे सौंपा जाना था, तथा शेष 1,10,000/- रुपये 31.01.1980 तक अदा करने थे, जिस समय विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना था। पक्षकारों के बीच विवाद यह था कि कर्नल सुखदेव सिंह के अनुसार प्रतिवादी 1,35,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने और अनुबंध का पंजीकरण कराने में असफल रहा, जबकि प्रतिवादी का यह कहना था कि उसने 07.07.1979 को अपीलकर्ता के नाम 1,35,000/- रुपये का बैंक ड्राफ्ट खरीद लिया था, किन्तु अपीलकर्ता के पिता उसे प्राप्त करने के लिए उपस्थित नहीं हुए। यद्यपि अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 31.10.1979 के आदेश द्वारा शिकायत को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि विवाद सिविल प्रकृति का है और शिकायत पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती, तथापि माननीय एकल न्यायाधीश ने दिनांक 11.02.1980 के आदेश द्वारा उक्त आदेश को निरस्त कर दिया, यह कहते हुए कि प्रस्तुत तथ्यों से कर्नल सुखदेव सिंह की ओर से बेईमानी की मंशा का स्पष्ट अनुमान होता है और तदनुसार विधि के अनुसार विचारण जारी रखने का निर्देश दिया। इससे व्यथित होकर कर्नल सुखदेव सिंह ने विशेष अनुमति के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष अपील दायर की। सी.पी.सी. के आदेश 23 नियम 3 की व्याख्या करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला:

"10. नियम 3 के वर्तमान स्वरूप के अनुसार, जब किसी वाद में दावा पूर्णतः या आंशिक रूप से किसी वैध समझौते द्वारा निपटाया जाता है, तो वह समझौता लिखित रूप में होना चाहिए तथा उस पर पक्षकारों के हस्ताक्षर होने चाहिए और उनके बीच एक पूर्ण समझौता होना आवश्यक है। समायोजन स्थापित करने के लिए, समझौता स्वयं डिक्री में समाहित किए जाने योग्य होना चाहिए। जब पक्षकार वाद या अपील की सुनवाई के दौरान समझौता करते हैं, तो इस आवश्यकता को कि समझौता एक लिखित दस्तावेज

के रूप में तैयार हो और उस पर पक्षकारों के हस्ताक्षर हों, समाप्त करने का कोई कारण नहीं है। अतः न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पक्षकार शर्तों को लिखित रूप में प्रस्तुत करें।"

इस निर्णय से यह स्पष्ट है कि सुनवाई के दौरान, अर्थात् वाद या अपील के समय, जब पक्षकार आपस में समझौता करते हैं, तो उसे एक दस्तावेज के रूप में लिखित किया जाना चाहिए तथा उस पर पक्षकारों के हस्ताक्षर होने चाहिए। उक्त निर्णय का सार यह है कि न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पक्षकार समझौते की शर्तों को लिखित रूप में प्रस्तुत करें।

10. *पुष्पा देवी भगत (मृत) विधिक प्रतिनिधि साधना राय (श्रीमती) बनाम राजेन्द्र सिंह एवं अन्य*, (2006) 5 एस.सी.सी. 566 में, उपर्युक्त गुरप्रीत सिंह मामले (उपर्युक्त) में प्रयुक्त 'दस्तावेज' (इंस्ट्रूमेंट) शब्द का अभिप्राय औपचारिक प्रकृति के लिखित दस्तावेज से है। इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि जब उच्च न्यायालय के समक्ष लेटर्स पेटेंट अपील की सुनवाई प्रारंभ हुई, तब पक्षकारों ने समझौते की संभावना तलाशने हेतु समय लिया और जब सुनवाई पुनः प्रारंभ हुई, तब अपीलकर्ता के पिता ने समझौते का प्रस्ताव रखा, जिसे अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने भी समर्थन दिया। प्रतिवादी भी वहां उपस्थित था और उसने प्रस्ताव को स्वीकार करने का वक्तव्य दिया। उक्त प्रस्ताव और स्वीकृति को अंतिम नहीं माना गया, क्योंकि उन शर्तों को अभिलेखित कर अपील का निपटारा नहीं किया गया। इसके विपरीत, उन प्रस्तावों को दर्ज किया गया और प्रस्ताव के अनुसार भुगतान हेतु मामले को स्थगित किया गया। अगली सुनवाई की तिथि पर, प्रतिवादी ने कहा कि वह सहमत नहीं है। उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि चूंकि प्रतिवादी प्रस्तावित समझौते का पालन करने के लिए तैयार नहीं है, अतः अब अपील का गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाएगा। उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा यह तर्क देते हुए चुनौती दी गई कि अधिवक्ताओं के वक्तव्यों के अभिलेखन द्वारा मामला विधिसम्मत समझौते से निपट गया था और प्रतिवादी ऐसे समझौते से पीछे नहीं हट सकता था, अतः उच्च न्यायालय को समझौते के अनुसार अपील का निपटारा करना चाहिए था। इन्हीं तथ्यों की पृष्ठभूमि में गुरप्रीत सिंह मामले (उपर्युक्त) के संदर्भ में प्रश्न पर विचार किया गया। पुष्पा देवी मामले (उपर्युक्त) में यह स्पष्ट किया गया कि उस मामले की विशिष्टता यह थी कि यद्यपि प्रस्तुतियां दर्ज की गई थीं, किन्तु उन पर पक्षकारों या उनके अधिवक्ताओं के हस्ताक्षर नहीं थे और न ही न्यायालय ने उन प्रस्तुतियों को समझौता माना। जबकि पुष्पा देवी मामले (उपर्युक्त) में, न्यायालय ने न केवल समझौते की शर्तों को अभिलेखित किया, बल्कि तत्पश्चात अधिवक्ताओं के वक्तव्यों को भी दर्ज करने का निर्देश दिया। अधिवक्ताओं के वक्तव्य शपथ पर दर्ज किए गए, पढ़कर सुनाए गए और सही मानकर स्वीकार किए गए तथा दोनों अधिवक्ताओं द्वारा हस्ताक्षरित किए गए। इन परिस्थितियों में, पुष्पा देवी मामले (उपर्युक्त) में यह निष्कर्ष निकाला गया कि पक्षकारों (उनके अधिवक्ताओं द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए) द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में एक वैध समझौता विद्यमान था।

11. हमारे आदेश के पूर्ववर्ती भाग में हम पहले ही अभिलिखित कर चुके हैं कि द्वितीय अपील की सुनवाई के दौरान, दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं ने सहमति व्यक्त की कि निर्धारित विधि प्रश्नों पर विचार किए बिना, अपील में चुनौती दी गई डिक्री में संशोधन करते हुए, सर्वेक्षण संख्या 110/65 के अंतर्गत भूमि के क्षेत्रफल को तथा उसके अंतर्गत स्थित भूमि और दूसरी ओर की सर्वेक्षण संख्या 109/65 की भूमि के बीच की सीमा, जो वर्तमान में स्थल पर विद्यमान शीशम एवं श्रीन वृक्ष हैं, को सम्मिलित कर मामले का निपटारा किया जा सकता है।

अधिवक्ता की भूमिका

12. अब हमें न्यायालय के समक्ष किए गए समझौते की सूचना देने में अधिवक्ता की भूमिका पर विचार करना है। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि सी.पी.सी. के आदेश 23 नियम 3 के अनुसार, समझौता लिखित रूप में होना चाहिए तथा उस पर पक्षकारों के हस्ताक्षर होने चाहिए। उपर्युक्त प्रावधान के प्रभाव तथा अधिवक्ता की भूमिका पर इस न्यायालय द्वारा बायराम पेस्टोनजी गारिवाला बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य, (1992) 1 एस.सी.सी. 31 में विस्तार से विचार किया गया है और यह कहा गया है कि भारत में न्यायालयों ने अधिवक्ताओं की पारंपरिक भूमिका तथा अपने मुवक्किलों की ओर से कार्य करने के उनके निहित अधिकारों की सीमा एवं प्रकृति को निरंतर मान्यता दी है। श्री रंजीत कुमार ने हमारा ध्यान वकालतनामा (अनुबंध-आर3) की प्रति एवं उसमें निहित शर्तों की ओर आकर्षित किया है। वकालतनामा में संलग्न शर्तें अधिवक्ता को अपने मुवक्किल की ओर से अनेक कार्य करने में सक्षम बनाती हैं, जिनमें न्यायालय के समक्ष लंबित वाद या मामले को वापस लेना अथवा उसका समझौता करना भी सम्मिलित है। वकालतनामा की विभिन्न धाराएं निःसंदेह अधिवक्ता को अत्यंत हितकारी ढंग से कार्य करने का अधिकार प्रदान करती हैं, जिसमें समझौता या निपटान करना भी शामिल है। पैरा 37, 38 एवं 39 में की गई निम्नलिखित टिप्पणियां एवं निष्कर्ष प्रासंगिक हैं:

> "37. तथापि, हम यह जोड़ना चाहेंगे कि अधिवक्ता के लिए यह विवेकपूर्ण होगा कि वह निहित अधिकार के आधार पर कार्य न करे, सिवाय उन परिस्थितियों के जब तत्काल समझौते द्वारा वाद का निपटान करना आवश्यक हो और पक्षकार के हस्ताक्षर बिना अनावश्यक विलंब के प्राप्त न किए जा सकें। वर्तमान समय में, जब संचार के साधन अधिक सरल और त्वरित हो गए हैं, ऐसी स्थिति विरल ही उत्पन्न होती है। एक समझदार और सतर्क अधिवक्ता निःसंदेह स्वयं को पूर्व में ही लिखित रूप में आवश्यक अधिकार प्राप्त कर लेगा ताकि ऐसी सभी परिस्थितियों का सामना किया जा सके और न तो उसके अधिकार पर और न ही उसकी सत्यनिष्ठा पर कोई संदेह उत्पन्न हो। यह आवश्यक सावधानी अधिवक्ता की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की रक्षा करेगी तथा विधिक पेशे की गरिमा एवं सम्मान को बनाए रखेगी।"

"38. सामान्य विधि प्रणाली में अधिवक्ता की परंपरागत रूप से मान्यता प्राप्त भूमिका तथा सी.पी.सी. (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संसद द्वारा दूर किए जाने वाले दोष, अर्थात् समझौते की शर्तों को पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में लाकर निश्चितता प्राप्त करना और मामलों के त्वरित निपटान को सुनिश्चित करना, तथा समझौता डिक्री को ऐसे मामलों को भी समाहित करने की अनुमति देना जो वाद की विषय-वस्तु के बाहर हों किन्तु पक्षकारों से संबंधित हों, के परिप्रेक्ष्य में, यह नहीं माना जा सकता कि विधायिका ने, स्पष्ट शब्दों के अभाव में, पक्षकारों को अपने मामले में अधिवक्ता या उनके विधिवत अधिकृत अभिकर्ताओं के माध्यम से समझौता करने से वंचित किया है। ऐसा कोई अनुमान विधायी उद्देश्य के विपरीत होगा, जिसका उद्देश्य अनिश्चितताओं को समाप्त कर तथा समझौते के क्षेत्र का विस्तार कर न्यायालयों में लंबित मामलों के शीघ्र निस्तारण को सुनिश्चित करना है।"

"39. पक्षकार द्वारा स्वयं व्यक्तिगत रूप से समझौते या करार पर हस्ताक्षर करने की अनिवार्यता अक्सर अनावश्यक विलंब, हानि एवं असुविधा उत्पन्न कर सकती है, विशेषकर गैर-निवासी व्यक्तियों के मामलों में। यह सर्वमान्य सिद्धांत रहा है कि कोई भी पक्षकार अपने विधिवत अधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से कार्य कर सकता है। यदि पावर ऑफ अटॉर्नी धारक अपने प्रधान की ओर से समझौता या करार कर सकता है, तो वकालतनामा द्वारा विधिवत अधिकृत अधिवक्ता भी अपने मुवक्किल की ओर से कार्य कर सकता है। ऐसी क्षमता को मान्यता न देना न केवल पक्षकारों को व्यक्तिगत रूप से अधिक असुविधा और हानि पहुंचाएगा, बल्कि न्यायालय की कार्यवाही की प्रगति में भी विलंब करेगा। यदि विधायिका का उद्देश्य ऐसा मूलभूत परिवर्तन करना होता, भले ही उससे विलंब, असुविधा और अनावश्यक व्यय होता, तो वह इसे स्पष्ट रूप से व्यक्त करती।"

13. *जिनेश्वरदास (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य बनाम जागरानी (श्रीमती) एवं अन्य*, (2003) 11 एस.सी.सी. 372 में, इस न्यायालय ने बायराम पेस्टोनजी मामले (उपर्युक्त) में लिए गए निर्णय का अनुमोदन करते हुए यह कहा कि न्यायालय के समक्ष प्राप्त सहमति के परिणामस्वरूप पारित निर्णय या डिक्री को सदैव समझौते या निपटान एवं समायोजन पर आधारित नहीं कहा जा सकता; यह कभी-कभी स्वीकृति पर आधारित निर्णय भी हो सकता है।

14. जगतार सिंह बनाम परगट सिंह एवं अन्य, (1996) 11 एस.सी.सी. 586 में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलकर्ता का अधिवक्ता पक्षकार के निर्देशों के आधार पर अपील वापस लेने के संबंध में वक्तव्य देने का अधिकार रखता है। उस मामले में, वहां के प्रतिवादी संख्या 1, जो याचिकाकर्ता का बड़ा भाई था, ने याचिकाकर्ता तथा उसके तीन भाइयों के विरुद्ध यह घोषणा करने हेतु वाद दायर किया कि दिनांक 04.05.1990 की डिक्री शून्य एवं अवैध है, जिसे अधीनस्थ न्यायाधीश, होशियारपुर द्वारा दिनांक 29.09.1993 को डिक्री किया गया। वहां के याचिकाकर्ता ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, होशियारपुर की न्यायालय में अपील दायर की। दिनांक 15.09.1995 को अधिवक्ता ने यह वक्तव्य दिया कि याचिकाकर्ता अपील को आगे

नहीं बढ़ाना चाहता। इसके आधार पर अपील को वापस लिया गया मानते हुए खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने अपीलीय न्यायालय के आदेश को पुनरीक्षण में चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने उक्त आदेश की पुष्टि की, जिसके परिणामस्वरूप इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका दायर की गई। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने अपने अधिवक्ता को अपील वापस लेने के लिए अधिकृत नहीं किया था। यह भी तर्क दिया गया कि अपील स्वीकार किए जाने के पश्चात न्यायालय को उसे वापस लेने के रूप में खारिज करने का अधिकार नहीं है और उसे विचारण न्यायालय के तर्कों की वैधता का परीक्षण करते हुए तथा उनसे सहमति या असहमति व्यक्त करते हुए गुण-दोष के आधार पर निर्णय करना चाहिए। उक्त तर्क को अस्वीकार करते हुए न्यायालय ने निम्नलिखित कहा:

> "3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता ने अपने अधिवक्ता को अपील वापस लेने के लिए अधिकृत नहीं किया था। अपील को स्वीकार करने के पश्चात न्यायालय के पास इसे वापस लिए जाने के रूप में खारिज करने का अधिकार नहीं है, बल्कि उसे विचारण न्यायालय के तर्कों की वैधता का परीक्षण करते हुए तथा उनसे सहमति या असहमति व्यक्त करते हुए गुण-दोष के आधार पर निर्णय करना चाहिए। हमें इस तर्क में कोई बल नहीं प्रतीत होता। आदेश 3 नियम 4 सी.पी.सी. अधिवक्ता को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह वाद की कार्यवाही विधिवत समाप्त होने तक अभिलेख पर बना रहे। अतः अधिवक्ता को पक्षकार के निर्देशों के आधार पर अपील वापस लेने के संबंध में वक्तव्य देने का अधिकार है। तब प्रश्न यह है कि क्या न्यायालय को अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील में गुण-दोष के आधार पर कारणयुक्त आदेश पारित करना आवश्यक है? आदेश 23 नियम 1(1) एवं (4) पक्षकार को वाद में किए गए दावे को पूर्णतः या आंशिक रूप से त्यागने का अधिकार प्रदान करते हैं। सी.पी.सी. की धारा 107(2) के प्रभाव से यह प्रावधान अपील पर भी समान रूप से लागू होता है और अपीलीय न्यायालय के पास सहविस्तृत अधिकार होता है कि वह अपीलकर्ता को प्रतिवादी के विरुद्ध अपनी अपील को पूर्णतः या आंशिक रूप से छोड़ने की अनुमति दे। परिणामस्वरूप, यद्यपि अपील आदेश 41 नियम 9 के अंतर्गत स्वीकार की गई थी, तथापि न्यायालय के पास यह अधिकार है कि वह मामले के गुण-दोष में जाए बिना तथा नियम 11 के अंतर्गत निर्णय किए बिना अपील को वापस लिया गया मानकर खारिज कर दे।"

> 4. तदनुसार, हम यह मानते हैं कि अधिवक्ता द्वारा किया गया कार्य आदेश 3 नियम 4 सी.पी.सी. के अंतर्गत उसे प्राप्त अधिकारों के अनुरूप है। यदि वास्तव में अधिवक्ता ने पक्षकार के हित में कार्य नहीं किया है या उसके निर्देशों के विरुद्ध कार्य किया है, तो उसका उपयुक्त उपाय अन्यत्र उपलब्ध है और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया सी.पी.सी. के प्रावधानों के अनुरूप है। हमें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण में की है, में कोई अवैधता नहीं मिलती।"

15. उपर्युक्त निर्णयों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जो अधिवक्ता वकालतनामा निष्पादित कर पक्षकार द्वारा विधिवत अधिकृत किया गया है, वह आदेश 3 नियम 4 के अनुसार वाद की कार्यवाही के विधिवत समाप्त होने तक अभिलेख पर बने रहने का अधिकार रखता है। अतः अधिवक्ता को पक्षकार के निर्देशों के आधार पर अपील वापस लेने के संबंध में वक्तव्य देने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में, अधिवक्ता द्वारा निर्देशों के आधार पर अपील की वापसी या डिक्री में संशोधन के संबंध में दिया गया वक्तव्य उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर है, और यदि वास्तव में अधिवक्ता ने पक्षकार के हित में कार्य नहीं किया है या उसके निर्देशों के विरुद्ध कार्य किया है, तो उसका उपयुक्त उपाय अन्यत्र उपलब्ध है। यद्यपि अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोर देकर यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील संख्या 19/2005 की सुनवाई के दौरान अधिवक्ता द्वारा दिया गया वक्तव्य किसी निर्देश पर आधारित नहीं था, तथापि इसे सिद्ध करने हेतु कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। निस्संदेह, श्री गर्ग ने इस तथ्य पर बल दिया कि प्रथम अपीलकर्ता शय्याग्रस्त था और अस्पताल में भर्ती था, अतः वह कोई निर्देश नहीं दे सका। उनके अनुसार, न्यायालय के समक्ष दिया गया वक्तव्य, विशेषकर कुछ अधिकारों के त्याग से संबंधित, स्वीकार्य नहीं है और अधिवक्ता के अधिकार से परे है। यह सत्य है कि संबंधित समय पर, जब अधिवक्ता ने द्वितीय अपील की सुनवाई के दौरान वक्तव्य दिया, तब पक्षकारों में से एक बीमार और अस्पताल में भर्ती था। तथापि, यह विवादित नहीं है कि उसका पुत्र, जो उच्च न्यायालय के समक्ष भी पक्षकार था, उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त, यह भी विवादित नहीं है कि पुनर्विचार याचिका दायर किए जाने तक अपीलकर्ताओं ने अपने अधिवक्ता द्वारा दिए गए ऐसे वक्तव्य के संबंध में कोई आपत्ति पत्र लिखकर या नोटिस भेजकर नहीं उठाई। सी.पी.सी. के प्रावधानों, जिनकी इस न्यायालय द्वारा व्याख्या की गई है, के आलोक में ऐसे किसी उपाय या सामग्री के अभाव में यह नहीं माना जा सकता कि अधिवक्ता को पक्षकारों की ओर से कोई वक्तव्य देने से रोका गया था। निस्संदेह, जैसा कि बायराम पेस्टोनजी मामले (उपर्युक्त) में कहा गया है, अधिवक्ता की वर्तमान प्रतिष्ठा की रक्षा तथा विधिक पेशे की गरिमा और सम्मान को बनाए रखने के लिए, लिखित रूप में निर्देश प्राप्त करना सदैव वांछनीय है।

पुनर्विचार याचिका की ग्राह्यता

16. अब, इस न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. (सी) संख्या 10939/2008 के निरस्त किए जाने के पश्चात उच्च न्यायालय के समक्ष दायर पुनर्विचार याचिका की ग्राह्यता पर विचार करते हैं। यह विवादित नहीं है कि उच्च न्यायालय ने दिनांक 18.03.2008 के आदेश द्वारा, दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं के कथनों के आधार पर, द्वितीय अपील संख्या 19/2005 का निपटारा उसमें उल्लिखित अनुसार डिक्री में संशोधन करते हुए किया। उक्त आदेश के विरुद्ध, अपीलकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त एस.एल.पी. दायर की। दिनांक 14.05.2008 को, इस न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता को सुनने के पश्चात निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता याचिका वापस लेने की प्रार्थना करते हैं। की गई प्रार्थना स्वीकार की जाती है। विशेष अनुमति याचिका को वापस लिए जाने के कारण खारिज किया जाता है।"

उपर्युक्त आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अधिवक्ता के अनुरोध के आधार पर एस.एल.पी. को वापस लिए जाने के कारण खारिज किया गया। यह भी स्पष्ट है कि आगे की कार्यवाही हेतु कोई अनुमति, आरक्षण या स्वतंत्रता प्रदान नहीं की गई। तथापि, एस.एल.पी. का खारिज होना उसी न्यायालय के समक्ष पुनर्विचार याचिका दायर करने में बाधा नहीं है। इस पहलू पर इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा कुन्हयाम्मद एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2000) 6 एस.सी.सी. 359 में विचार किया गया था। इस विषय पर पैरा 38, 40 एवं 44 में विस्तार से चर्चा की गई है।

"38. आदेश 47 नियम 1(क) की भाषा से यह स्पष्ट है कि एस.एल.पी. के खारिज हो जाने के बाद भी पुनर्विचार दायर किया जा सकता है। अतः आदेश 47 नियम 1(क) में प्रयुक्त शब्द 'कोई अपील दायर नहीं की गई' का अर्थ उस स्थिति से भी है जहाँ विशेष अनुमति प्रदान नहीं की गई है। उस समय तक विधि की दृष्टि में उच्चतर न्यायालय के समक्ष कोई अपील लंबित नहीं होती। इसलिए, विशेष अनुमति प्रदान किए जाने से पूर्व उच्च न्यायालय में पुनर्विचार याचिका दायर की जा सकती है, किन्तु उसके पश्चात नहीं। इसका कारण स्पष्ट है। एक बार विशेष अनुमति प्रदान हो जाने पर, उच्च न्यायालय के आदेश की वैधता पर विचार करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय में निहित हो जाता है और उसके पश्चात उच्च न्यायालय पुनर्विचार याचिका पर विचार नहीं कर सकता, जब तक कि ऐसी पुनर्विचार याचिका विशेष अनुमति प्रदान किए जाने से पूर्व ही उच्च न्यायालय में दायर न की गई हो।

40. अपील करने के लिए विशेष अनुमति प्रदान करने की याचिका अनेक कारणों से खारिज की जा सकती है। उदाहरणार्थ, इसे (i) समय-सीमा से बाधित होने के कारण, या (ii) दोषपूर्ण प्रस्तुति के कारण, (iii) याचिकाकर्ता के पास याचिका दायर करने का कोई अधिकार न होने के कारण, (iv) याचिकाकर्ता के आचरण के कारण जिससे वह न्यायालय की उदारता का अधिकारी न हो, (v) याचिकाकर्ता द्वारा विचारार्थ उठाया गया प्रश्न इस न्यायालय द्वारा विचार योग्य न होने या देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किए जाने योग्य न होने के कारण आदि से खारिज किया जा सकता है। ऐसी याचिकाओं का निपटारा करते समय इस न्यायालय द्वारा प्रायः "सुना गया और खारिज", "खारिज", "समय-सीमा से बाधित होने के कारण खारिज" आदि अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है। यह भी संभव है कि प्रवेश स्तर पर ही प्रतिपक्षी 'कैविएट' या नोटिस पर उपस्थित होकर याचिका की ग्राह्यता का विरोध करे। न्यायालय याचिकाकर्ता द्वारा अपील दायर करने हेतु अनुमति देने के अनुरोध की गुण-दोष के आधार पर समीक्षा कर, अपनी राय बनाकर "गुण-दोष के आधार पर खारिज" कह सकता है। ऐसा आदेश एकपक्षीय रूप से, अर्थात् प्रतिपक्षी की अनुपस्थिति में भी पारित

किया जा सकता है। किसी भी स्थिति में, ऐसा खारिज किया जाना एक गैर-भाषणात्मक आदेश रहेगा, जिसमें कोई कारण निर्दिष्ट नहीं किया गया हो और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई विधि घोषित नहीं की गई हो। यह खारिज किया जाना अपील का नहीं, बल्कि विशेष अनुमति याचिका का होता है। भले ही गुण-दोष पर विचार किया गया हो, वह केवल विशेष अनुमति याचिका के गुण-दोष तक ही सीमित होता है। हमारे मत में, ऐसे आदेश पर न तो विलयन का सिद्धांत लागू होता है और न ही संविधान के अनुच्छेद 141 का। आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के अंतर्गत प्रदत्त पुनर्विचार अधिकार के प्रयोग के आधार, या किसी अन्य वैधानिक प्रावधान के अंतर्गत, अथवा उच्च न्यायालय द्वारा रिट या पर्यवेक्षणीय अधिकारिता के प्रयोग में पारित आदेश के पुनर्विचार के आधार (जहाँ भी आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. से उद्भूत सिद्धांत मार्गदर्शक होते हैं) आवश्यक रूप से वही नहीं होते जिनके आधार पर यह न्यायालय विशेष अनुमति प्रदान करने या न करने का विवेक प्रयोग करता है। मात्र विशेष अनुमति याचिका के खारिज होने से उस न्यायालय, अधिकरण या मंच का अधिकार समाप्त नहीं होता, जिसके आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका दायर की गई थी, कि वह अपने आदेश का पुनर्विचार करे, यदि पुनर्विचार अधिकार के प्रयोग के लिए आधार विद्यमान हों। जहाँ एस.एल.पी. को खारिज करने वाला आदेश एक भाषणात्मक आदेश हो, अर्थात् जहाँ इस न्यायालय ने याचिका को खारिज करने के कारण बताए हों, तब भी वह आदेश अपील की अनुमति देने के अनुरोध को अस्वीकार करने का ही रहता है। याचिकाकर्ता को प्रारंभिक स्तर पर ही अपीलीय अधिकारिता में प्रवेश की अनुमति दिए बिना वापस कर दिया जाता है। यहाँ भी विलयन का सिद्धांत लागू नहीं होता। किन्तु इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश में घोषित विधि पर संविधान के अनुच्छेद 141 का अनुप्रयोग होगा।

इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश में व्यक्त निर्णय के समर्थन में दिए गए कारण (स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा) तथ्य या विधि के प्रश्न पर, किसी अन्य न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी के उस अधिकार को समाप्त कर देंगे कि वह इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के विपरीत या उससे भिन्न कोई मत व्यक्त करे, क्योंकि ऐसा करने की अनुमति देना न्यायिक अनुशासन के प्रतिकूल होगा और इस न्यायालय के आदेश का अनादर होगा। तथापि, यह स्थिति विलयन के सिद्धांत के आधार पर नहीं होगी।

44. संक्षेप में, हमारे निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

(i) जहाँ किसी न्यायालय, अधिकरण अथवा किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध किसी उच्चतर मंच के समक्ष अपील या पुनरीक्षण का प्रावधान हो तथा ऐसा उच्चतर मंच उसके समक्ष विवादित निर्णय को संशोधित, पलट या अनुमोदित करता है, वहाँ अधीनस्थ मंच का निर्णय उच्चतर मंच के निर्णय में विलीन हो जाता है और वही (उच्चतर मंच का निर्णय) विधि की दृष्टि में अस्तित्व में रहता है, प्रभावी रहता है तथा प्रवर्तनीय होता है।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त अधिकारिता दो चरणों में विभाजित है। पहला चरण विशेष अनुमति याचिका दायर करने की प्रार्थना के निस्तारण तक का होता है। दूसरा चरण तब प्रारंभ होता है जब अपील करने की अनुमति प्रदान की जाती है और विशेष अनुमति याचिका अपील में परिवर्तित हो जाती है।

(iii) विलय का सिद्धांत सार्वभौमिक या असीमित अनुप्रयोग का सिद्धांत नहीं है। यह उच्चतर मंच द्वारा प्रयुक्त अधिकारिता की प्रकृति पर निर्भर करता है तथा प्रस्तुत की गई या प्रस्तुत किए जाने योग्य चुनौती की विषयवस्तु अथवा विषय-क्षेत्र ही विलय की प्रयोज्यता का निर्धारण करेगा। उच्चतर अधिकारिता में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह अपने समक्ष प्रस्तुत आदेश को पलट सके, संशोधित कर सके या अनुमोदित कर सके। संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत, सर्वोच्च न्यायालय अपनी अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपीलित निर्णय-डिक्री या आदेश को पलट सकता है, संशोधित कर सकता है या अनुमोदित कर सकता है, न कि विशेष अनुमति याचिका के निस्तारण के समय विवेकाधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए। अतः विलय का सिद्धांत पूर्व स्थिति में लागू होगा, न कि उत्तर स्थिति में।

(iv) अपील करने हेतु विशेष अनुमति से इंकार करने वाला आदेश बोलता हुआ (कारणयुक्त) या अबोल (अकारण) हो सकता है। दोनों ही स्थितियों में यह विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है। विशेष अनुमति से इंकार करने वाला आदेश चुनौतीगत आदेश के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं होता है। इसका केवल इतना अर्थ है कि न्यायालय अपील दायर करने की अनुमति देने हेतु अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए इच्छुक नहीं था।

(v) यदि अपील की अनुमति से इंकार करने वाला आदेश कारणयुक्त (speaking order) है, अर्थात उसमें अनुमति प्रदान करने से इंकार करने के कारण बताए गए हैं, तो उस आदेश के दो निहितार्थ होते हैं। प्रथम, उस आदेश में निहित विधि का कथन संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि की उद्घोषणा होता है। द्वितीय, विधि की उद्घोषणा के अतिरिक्त, आदेश में जो कुछ भी कहा गया है, वे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष हैं, जो संबंधित पक्षकारों पर तथा तत्पश्चात किसी भी कार्यवाही में न्यायिक अनुशासन के आधार पर न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण पर बाध्यकारी होंगे, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है।

परंतु, इसका यह अर्थ नहीं है कि अधीनस्थ न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकरण का आदेश विशेष अनुमति याचिका को अस्वीकार करने वाले सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में विलीन हो गया है, या यह कि सर्वोच्च न्यायालय का आदेश ही एकमात्र ऐसा आदेश है जो पक्षकारों के बीच आगामी कार्यवाहियों में *res judicata* के रूप में बाध्यकारी है।

(vi) एक बार अपील करने की अनुमति प्रदान कर दी जाती है और सर्वोच्च न्यायालय की अपीलीय अधिकारिता का आह्वान हो जाता है, तब अपील में पारित आदेश विलय के सिद्धांत को आकर्षित करेगा; ऐसा आदेश पलटने, संशोधित करने या मात्र अनुमोदन का भी हो सकता है।

(vii) जब कोई अपील दायर कर दी जाती है अथवा अपील करने की अनुमति हेतु दायर याचिका सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील में परिवर्तित हो जाती है, तब सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1 के उप-नियम (1) के अनुसार, उच्च न्यायालय की पुनर्विचार याचिका पर विचार करने की अधिकारिता समाप्त हो जाती है।

17. इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त स्थापित सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में, विशेष अनुमति याचिका (SLP) के खारिज हो जाने के पश्चात भी, पीड़ित पक्षकार संबंधित न्यायालय के समक्ष पुनर्विचार याचिका प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत होते हैं। वर्तमान मामले में, यद्यपि अपीलकर्ताओं ने द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका दायर की थी, तथापि निर्विवाद रूप से उक्त विशेष अनुमति याचिका न्यायालय की अनुमति के बिना ही वापस ले ली गई और उसी रूप में खारिज कर दी गई।

18. इसी प्रकार का प्रश्न इस न्यायालय द्वारा *सरगुजा ट्रांसपोर्ट सर्विस बनाम राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण, मध्य प्रदेश, ग्वालियर एवं अन्य*, (1987) 1 एससीसी 5 में विचारित किया गया था। इस निर्णय में यह धारित किया गया कि जहाँ कोई याचिकाकर्ता उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत दायर अपनी याचिका को बिना नई याचिका दायर करने की अनुमति प्राप्त किए वापस ले लेता है, वहाँ अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत उपलब्ध उपाय को उस याचिका में वर्णित कारण-कार्रवाई के संबंध में त्याग किया हुआ माना जाएगा और उसे उसी अनुच्छेद के अंतर्गत उच्च न्यायालय में नई याचिका दायर करने की अनुमति नहीं होगी, यद्यपि अन्य उपाय जैसे वाद या इस न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 के अंतर्गत रिट याचिका दायर करना उसके लिए उपलब्ध रहेगा। यह भी धारित किया गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 1 के अंतर्निहित सिद्धांत को न्याय के प्रशासन के हित में रिट याचिकाओं की वापसी के मामलों में भी विस्तारित किया जाना चाहिए। उस मामले में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मुख्य रूप से यह तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर रिट याचिका को अस्वीकार कर त्रुटि की कि याचिकाकर्ता ने पूर्व में अधिकरण द्वारा 04.10.1985 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए दायर रिट याचिका को बिना नई याचिका दायर करने की अनुमति प्राप्त किए वापस ले लिया था। यह तर्क विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि चूँकि उच्च न्यायालय ने पूर्ववर्ती याचिका का गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं किया था, बल्कि केवल याचिकाकर्ता को याचिका वापस लेने की अनुमति दी थी, अतः उक्त पूर्व याचिका की वापसी को पश्चातवर्ती रिट याचिका के लिए बाधा के रूप में नहीं माना जा सकता था। उक्त प्रश्न पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 1 के उप-नियम (3) तथा अनुच्छेद 226/227

के अंतर्गत दायर रिट याचिकाओं पर उसकी प्रयोज्यता का परीक्षण किया और निम्नलिखित रूप में निर्णय दिया:

> "9. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या कोई याचिकाकर्ता, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय में दायर अपनी रिट याचिका को बिना नई याचिका दायर करने की अनुमति प्राप्त किए वापस ले चुका है, उसी अनुच्छेद के अंतर्गत उच्च न्यायालय में पुनः एक नई रिट याचिका दायर कर सकता है। इस बिंदु पर दरयाओ मामले का निर्णय कोई सहायता प्रदान नहीं करता। किंतु हमारा मत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 1 के अंतर्निहित सिद्धांत को न्याय के प्रशासन के हित में रिट याचिकाओं की वापसी के मामलों में भी विस्तारित किया जाना चाहिए, न कि न्यायनिर्णीत विषय के आधार पर, बल्कि उपर्युक्त रूप से वर्णित लोक नीति के आधार पर। यह वादकारियों को बेंच-हंटिंग जैसी प्रवृत्तियों में लिप्त होने से भी हतोत्साहित करेगा। किसी भी स्थिति में, ऐसे मामले में याचिकाकर्ता को संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का पुनः आह्वान करने की अनुमति देने का कोई उचित कारण नहीं है। यद्यपि उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका को बिना नई याचिका दायर करने की अनुमति के वापस लेने से अन्य उपाय, जैसे वाद या भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत याचिका, अवरुद्ध नहीं होते, क्योंकि ऐसी वापसी न्यायनिर्णीत विषय के समान नहीं होती, तथापि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उपलब्ध उपाय को उस कारण-कार्रवाई के संबंध में, जिस पर रिट याचिका आधारित थी, त्याग किया हुआ माना जाना चाहिए, जब याचिकाकर्ता उसे बिना ऐसी अनुमति के वापस लेता है। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय यह मानने में सही था कि उसी विषय-वस्तु के संबंध में उसके समक्ष एक नई रिट याचिका ग्राह्य नहीं थी, क्योंकि पूर्ववर्ती रिट याचिका बिना नई याचिका दायर करने की अनुमति के वापस ले ली गई थी। तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस आदेश में कही गई बातें उन रिट याचिकाओं पर लागू नहीं मानी जाएँगी, जिनमें किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न शामिल हो और जिसमें याचिकाकर्ता बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रकृति की रिट जारी करने की प्रार्थना करता हो या संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार के प्रवर्तन का प्रयास करता हो, क्योंकि ऐसे मामले पूर्णतः भिन्न आधार पर स्थित होते हैं। तथापि, हम इस प्रश्न को खुला छोड़ते हैं।"

19.पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में की गई चर्चा के आलोक में, विशेष अनुमति याचिका (SLP) के खारिज हो जाने के पश्चात, चाहे वह कारण सहित हो या बिना कारण के, पीड़ित पक्षकार पुनर्विचार याचिका दायर करने का अधिकारी होता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1(क), जो "पुनर्विचार" से संबंधित है, में प्रयुक्त भाषा के दृष्टिगत, वर्तमान पुनर्विचार याचिका (सिविल) संख्या डी-5/2008 को ग्राह्यता के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त चर्चा एवं कारणों के आधार पर, हम यह धारित करते हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका ग्राह्य थी, तथापि आदेश 3 नियम 1 एवं 4, जो अभिभाषकों की भूमिका से संबंधित अध्याय में निहित हैं, तथा अपीलकर्ताओं के इस आचरण को देखते हुए कि उन्होंने

अपने अधिवक्ता के कार्य के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई, सिवाय पुनर्विचार याचिका दायर करने के, हम अपीलकर्ताओं के दावे को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं।

20. अंततः, श्री गर्ग ने जोरदार रूप से यह तर्क दिया कि उनके अधिवक्ता द्वारा दी गई रियायत के कारण अपीलकर्ताओं ने अपनी संपत्ति खो दी और उन्हें धन के रूप में भारी क्षति हुई। द्वितीय अपील संख्या 19/2005 में उच्च न्यायालय के आदेश में उपलब्ध संशोधित डिक्री तथा सीमा-निर्धारण रेखा के रूप में विद्यमान शीशम एवं श्रीन वृक्षों के संबंध में प्रस्तुत नक्शे का अवलोकन करने पर, और यह कि जब भी वे वृक्ष किसी एक ओर गिरते हैं, उस भूमि के स्वामित्व वाले पक्षकार को उनका उपयोग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, हम उक्त तर्क को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

21. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, हमें दोनों अपीलों में कोई भी merit (योग्यता) नहीं पाई जाती। परिणामस्वरूप, वे निरस्त की जाती हैं। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

एन.जे. अपील निरस्त।

यह अनुवाद संजय नारायण, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|